विभिन्न दर्शनों में योगजन्य शक्तियों का स्वरूप

□ **साध्वी श्री संघमित्रा**
(युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी की शिष्या)

तप एवं ध्यान की प्रक्रिया का परिणाम आत्म-नैर्मल्य है। निर्मलता के उच्चस्तरीय आरोहण क्रम में आश्चर्यजनक, अलौकिक शक्तियों का अभिजागरण होता है। आत्मा के इस सामर्थ्यविशेष को पातञ्जल योग दर्शन में विभूति,[1] श्रीभागवत महापुराण में सिद्धि[2], दिगम्बर साहित्य में ऋद्धि एवं श्वेताम्बर साहित्य में लब्धि[3] संज्ञा से अभिहित किया गया है। आगम[4] तथा आगम के व्याख्यात्मक ग्रन्थों में लब्धि सम्बन्धी नाना उल्लेख प्राप्त हैं। विशेषावश्यक भाष्य में लब्धि के अट्ठाईस प्रकार हैं:[5]—

१. आमर्शोषधि लब्धि	२. संभिन्न श्रोता लब्धि	३. विप्रौषधि लब्धि
४. श्लेषमौषधि लब्धि	५. जल्लोषधि लब्धि	६. सर्वौषधि लब्धि
७. अवधिज्ञान लब्धि	८. ऋजुमति लब्धि	९. विपुलमति लब्धि
१०. चारण लब्धि	११. आशीविषय लब्धि	१२. केवलित्व लब्धि
१३. गणधरत्व लब्धि	१४. पूर्वधरत्व लब्धि	१५. अर्हत् लब्धि
१६. चक्रवर्तित्व लब्धि	१७. बलदेवत्व लब्धि	१८. वासुदेवत्व लब्धि
१९. क्षीर, मधु सर्पिरास्रव लब्धि	२०. कोष्टक बुद्धि लब्धि	२१. बीज बुद्धि लब्धि
२२. तेजोलेश्या लब्धि	२३. आहारक लब्धि	२४. शीतललेश्या लब्धि
२५. वैकुर्विक देह लब्धि	२६. पदानुसारी लब्धि	१७. अक्षीण महानसिक लब्धि
२८. पुलाक लब्धि		

---

१. पातञ्जल योग दर्शन विभूतिपाद—३.
२. श्री भाग० महा० ११।१५।१.
३. गुणप्रत्ययो हि सामर्थ्य विशेषो लब्धिः।—आ० म० १ अ०.
४. भगवती शतक ८।२।३१९.
५. आमोसहि विप्पोसहि खेलोसहि जल्लोसहि चैव।
सव्वोसहि संभिन्ने ओ हि रिउ विउलमइ लद्धी ॥१५०६॥
चारण आसीविस केवलिय गणहारिणो य पुव्वधरा।
अरहंत चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा य ॥१५०७॥
खीरमहुसप्पि आसव, कोट्ठय बुद्धि पयाणुसारी य।
तह बीयबुद्धि तेयग आहारग सीय लेसा य ॥१५०८॥
वेउव्विदेहलद्धी अक्खीण महाणसी पुलाया य।
परिणाम तववसेणं एमाई हुंति लद्धीओ ॥१५०९॥—विशे० भा०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औपपातिक सूत्र का लब्धि सम्बन्धित वर्गीकरण इससे भिन्न है। गणधरत्व, पूर्वधरत्व, अर्हल्लब्धि, चक्रवर्तित्व, बलदेवत्व, वासुदेवत्व, तेजोलेश्या, आहारक, शीतलेश्या और पुलाक लब्धि का उल्लेख प्रस्तुत वर्गीकरण में नहीं है। इनके स्थान पर मनोबली, वचनबली, कायबली, पटबुद्धि, विद्याधरत्व, आकाशपातित्व लब्धियों का विशेष उल्लेख है। क्षीर मधु सर्पिरास्रव इन तीनों लब्धियों की परिगणना विशेषावश्यकभाष्य में क्रमांक उन्नीस में सम्मिलित है। औपपातिक में तीनों के क्रमांक भिन्न-भिन्न हैं।

इन लब्धियों में अधिकांश लब्धियाँ अत्यन्त विस्मयकारी हैं। जो कार्य शीघ्र संचालित विशाल यन्त्रों से नहीं होता वह कार्य लब्धिसम्पन्न व्यक्ति के अंगुलि निर्देश का खेल है। अकालवर्षा, स्वर्ण-रत्न आदि की वर्षा, पतझड़ में वसन्त की बहार, नाना रूपों की रचना, विविध परिधान और पकवान योगी के चिन्तन मात्र से पलक झपकते ही निष्पन्न हो जाते हैं। योगियों की इस असाधारण क्षमता को लब्धियों की अर्थ विवेचना में अधिक स्पष्टता से समझा जा सकता है।

अवधि लब्धि से बिना इन्द्रिय-सहायता के भी दूरस्थ पदार्थों को जानने की तथा केवल लब्धि से अतीत-अनागत को जानने की क्षमता प्रकट होती है।

(१) **मनोबली,** (२) **वचनबली,** (३) **कायबली**—मनोबल, वचनबल, कायबल इन तीनों लब्धियों के स्वामी प्रभूत शक्तिधर होते हैं। मनोबली अनन्त स्थिरता के धारक, वचनबली प्रतिज्ञात वचन को निर्वहन करने में समर्थ और कायबली अम्लानभाव से एक वर्ष तक क्षुधा और पिपासा को सहन करने में अपार धृति सम्पन्न होते हैं[1]।

ये साधक मन, वचन और काय स्पर्श से वरदान तथा अभिशाप देने का अद्‌भुत सामर्थ्य रखते हैं।

श्लेष्म, जल्ल, विप्र, आमर्षलब्धि से योगी का श्लेष्म, स्वेद, प्रस्रवण बिन्दु, हस्तस्पर्श तथा सर्वौषधि लब्धि से केश, नख, लोश, त्वचा सब कुछ शीघ्र फलदायी औषध का काम करते हैं।

कोष्ठ बुद्धि, बीज बुद्धि, पट बुद्धि, पदानुसारी बुद्धि इन चारों लब्धियों का सम्बन्ध मानव की सुविकसित मेधा शक्ति से है।

कोष्ठ (कोठा) में निहित धान्य की तरह प्राप्त श्रुतसम्पदा को सुरक्षित रखना तथा सदा-सदा के लिए उसको स्मृतिघट में धारण किए रहना, बीज की तरह एक अर्थ से सहस्रों अर्थों को विकास देना, विविध पत्रपुष्पों के धारक पट की तरह सहस्रों वचन प्रयोगों को सद्यः ग्रहण कर लेना तथा एक पद से सहस्रों पदों को जान लेना क्रमशः कोष्ठ-बुद्धि, बीज बुद्धि, पट बुद्धि एवं पदानुसारी बुद्धि लब्धि का परिणाम है[2]।

संभिन्न श्रोता—इस लब्धि में सभी इन्द्रियों का कार्य एक ही इन्द्रिय से किया जा सकता है। एक ही स्पर्शेन्द्रिय से रूप, रस, गन्ध, शब्द सभी को स्पर्श के साथ-साथ ग्रहण कर लिया जाता है। इसी प्रकार जीभ, कान, नाक और आँख से देखना, सुनना, चखना, सूँघना और स्पर्शानुभूति करना सब कुछ हर इन्द्रियों से शक्य हो जाता है[3]। इस लब्धि का उल्लेख जैन आगमों में ही पाया जाता है।

क्षीरास्रव, मधुरास्रव, सर्पिरास्रव लब्धि—इन तीनों लब्धियों से सम्पन्न साधक के वचन प्रयोग में क्रमशः दूध एवं मधु बिन्दु जैसा मिठास और घृत जैसा स्नेह टपकता है।

---

१. औपपातिक टीका, पृ० ७६.

२. औपपातिक टीका, पृ० ७७.

३. औपपातिक टीका, पृ०७८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अक्षीण महानसिक लब्धि—इस लब्धि से पात्र का भोजन अखूट बन जाता है। थोड़े से भोजन से सहस्रों व्यक्ति भोजन कर लेते हैं पर लब्धिधर मुनि स्वयं उसमें से आहार ग्रहण न कर ले तब तक पात्र खाली नहीं होता है और भोजन कम नहीं होता है।[1]

ऋजुमति, विपुलमति लब्धि—ये दोनों मनःपर्यवज्ञान के भेद हैं। इनसे ढाई द्वीप में रहने वाले मनुष्यों के मन को जाना जा सकता है। ऋजुमति का स्वामी क्षेत्र परिमाण की दृष्टि से ढाई अंगुल कम और विपुलमति का अधिकारी ढाई अंगुल अधिक जानना है।[2]

विकुर्वण लब्धि—इससे नाना प्रकार के रूप बनाए जा सकते हैं। यहाँ लब्धि के स्थान पर मूलसूत्र में ऋद्धि शब्द का प्रयोग हुआ है।

चारण लब्धि—गति की अतिशय विशेषता जिन्हें प्राप्त होती है वे चारण कहलाते हैं। उन्हें आकाश में उड़ने की क्षमता प्राप्त होती है। वे दो प्रकार के होते हैं :—जंघाचारण, विद्याचारण। जंघाचारण एक ही उड़ान में रुचकवर द्वीप तक पहुँच जाते हैं। लौटते समय एक उड़ान में नन्दीश्वर द्वीप तक आ जाते हैं और दूसरी उड़ान में अपने स्थान तक पहुँचते हैं। विद्याचारण एक उड़ान में मानुषोत्तर पर्वत तक पहुँचते हैं। वापस आते समय एक ही उड़ान में अपने स्थान पर पहुँच जाते हैं। इस लब्धि के उपलब्धि हेतु जंघाचारण को अष्टमभक्त तप की तथा विद्याचारण को षडभक्त तप की साधना करनी पड़ती है।[3]

विद्याधर—आगम विद्याओं को विशिष्टता के साथ धारण करने का सामर्थ्य रखते हैं।

आकाशपाती—इस विद्या के स्वामी पादलेप लगाकर व्योम विहरण करते हैं। इस लब्धि से स्वर्ण, रत्न, कंकर आदि की वर्षा भी कराई जाती है।[4]

औपपातिक में प्रतिपादित लब्धियों में चारणत्व, आकाशपातित्व, संभिन्न श्रोता, इनके अतिरिक्त अन्य सभी लब्धियों की स्वामिनी नारी बन सकती है।

पुलाकलब्धि—इस लब्धि से चक्रवर्ती की सेना को भी पराभूत किया जा सकता है।

तेजोलब्धि—इस लब्धि में लक्षाधिक मनुष्यों को भस्म कर देने की क्षमता होती है। आधुनिक अणुबम के विस्फोट जैसा भयंकर विस्फोट इस लब्धि से किया जा सकता है।

शीतललब्धि—यह लब्धि महाविनाशकारी तेजोलब्धि के विस्फोट को उपशान्त कर सकती है।

आहारकलब्धि—इस लब्धि का अधिकारी विचित्र क्षमता रखता है। किसी जटिल प्रश्न का समाधान पाने हेतु अपने शरीर से कृत्रिम मनुष्य का निर्माण कर उसे तीर्थंकर के पास भेजता है। उस लघुकाय मनुष्य की गति इतनी शीघ्र होती है कि वह पलक झपकते ही बहुत लम्बा रास्ता पारकर तीर्थंकर भगवान् से समाधान पाकर अपने मूल स्वामी के शरीर में प्रवेश कर जाता है।

अर्हत्‌लब्धि, चक्रवर्तित्व, बलदेवत्व, वासुदेवत्व, गणधरत्व, पूर्वधरत्व आदि लब्धियों का अर्थ बहुत स्पष्ट है। नारी के लिए ये लब्धियाँ अप्राप्य हैं।

अरिहंत—अप्रतिहार्य अतिशय के धारक होते हैं।

---

१. औपपातिक टीका, पृ० ७६.
२. वही, पृ० ७६.
३. वही, पृ० ८०.
४. वही, पृ० ८०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्रवर्ती—चौदह रत्न, नवनिधि एवं भरतक्षेत्र में छह खण्ड के स्वामी होते हैं।

वासुदेव—ये तीन खण्ड के स्वामी होते हैं। बीस लाख अष्टापद जितना इनका बल होता है।

बलदेव—वासुदेव से इसमें आधा बल होता है।

गणधर—सर्वाक्षिरसन्निपातिलब्धि से सम्पन्न चार ज्ञान एवं चौदह पूर्व के धारक होते हैं। ये अन्तर्मुहूर्त में त्रिपदी के आधार पर द्वादशांगी की रचना करने में समर्थ होते हैं।[१]

पूर्वधर—इनके पास पूर्वों का ज्ञान होता है।

ये लब्धियाँ नारी समाज के लिए अप्राप्य हैं। इनके अभाव में मुक्ति द्वार अवरुद्ध नहीं है। वह नारी और पुरुष दोनों के लिए समान रूप से खुला है।

पौराणिक साहित्य में लब्धि के स्थान में सिद्धि का प्रयोग हुआ है। सिद्धियों के अठारह प्रकार हैं।[२]

(१) अणिमा, (२) महिमा, (३) लघिमा ये तीन शारीरिक सिद्धियाँ हैं। इन्द्रियों की सिद्धि का नाम "प्राप्ति" है। श्रुत और दृष्ट पदार्थों को इच्छानुसार अनुभव कर लेना "प्राकाम्य" नामक सिद्धि है। माया के कार्यों को प्रेरित करना 'ईषिता' सिद्धि है। प्राप्त भोगों में आसक्त न होना 'वशिता' है। अपनी इच्छानुसार सुख की उपलब्धि 'कामावसायिता' है।[३]

क्षुधा और पिपासा की सहज उपशान्ति, दूर स्थित वस्तु का दर्शन, मन के साथ शरीर का गमन करना, इच्छानुसार रूप का निर्माण, परकाय प्रवेश, इच्छामृत्यु, अप्सरा सहित देवक्रीड़ा का दर्शन, संकल्प सिद्धि, निर्विघ्न रूप से सर्वत्र सबके द्वारा आदेश पालन—ये दस प्रकार की सिद्धियाँ सत्त्व गुण के विकास का परिणाम हैं।[४]

इन अठारह सिद्धियों के अतिरिक्त पाँच सिद्धियाँ और भी हैं।[५]

१. **त्रिकालज्ञत्व**—भूत, भविष्य और वर्तमान की बात को जानना।

२. **अद्वन्द्वत्व**—शीत-उष्ण, सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों से पराजित न होना।

३. **परचित्त-अभिज्ञान**—दूसरों के चित्त को जान लेना।

४. **प्रतिष्टम्भ**—अग्नि, सूर्य, जल, विष आदि की शक्ति को स्तम्भित कर देना।

५. **अपराभव**—किसी से पराभूत नहीं होना। ये सिद्धियाँ योगियों को प्राप्त होती हैं।

सिद्धि प्राप्ति के प्रकार—जो अत्यन्त शुद्ध धर्ममय भगवत्-हृदय की धारणा करता है वह भूख, प्यास, जन्म-मृत्यु, शोक, मोह—इन छह उर्मियों से मुक्त हो जाता है।[६]

जो भगवत् स्वरूप में मन के द्वारा अनाहत नाद का चिन्तन करता है वह 'दूरश्रवण' सिद्धि को प्राप्त होता है।

---

१. भगवती, शतक १।१.

२. श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध ११, अ० १५, श्लोक ३.

३. श्रीमद्भागवत महापुराण, ११।१५, ४, ५.

४. वही, ११।१५। ६, ७.

५. त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वपरचित्तायभिज्ञता।
अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भो पराजयः॥
—वही, ११।१५।८.

६. वही, ११।१५।१८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस सिद्धि से आकाश में उपलब्ध होने वाली विविध भाषाओं को सुन सकता है और समझ सकता है।[1]

जो नेत्रों को सूर्य में और सूर्य को नेत्रों में संयुक्त सम्बन्ध स्थापित कर दोनों के संयोग में मन ही मन भगवत् स्वरूप का ध्यान करता है उसे 'दूर-दर्शन' नाम की सिद्धि प्राप्त होती हैं। इस सिद्धि से योगी समग्र विश्व को देख सकता है।[2]

प्राणवायु सहित मन और शरीर को ईश्वर-शक्ति के साथ संयुक्त कर ईश्वर की धारणा करता है, वह 'मनोजव' सिद्धि को प्राप्त करता है। इस सिद्धि से जहाँ जाने की इच्छा होती है क्षण भर में वह वहाँ पहुँच जाता है।[3]

जो योगी भगवत् स्वरूप में चित्त लगा देता है वह मनोनुकूल रुप धारण करने में समर्थ हो जाता है।[4]

जो योगी दूसरों के शरीर में प्रवेश करना चाहे 'मैं वही हूँ' ऐसी दृढ़ धारणा से उसकी प्राणवायु एक फूल से दूसरे फूल पर बैठने वाले भ्रमर की भाँति परकाय-प्रवेश में सफल हो जाती है।[5]

भगवत् भक्ति में जिसका चित्त शुद्ध हो जाता है वह त्रिकालदर्शी हो जाता है।[6]

योगमय शरीर को अग्नि आदि कोई पदार्थ नष्ट नहीं कर सकते हैं।[7]

योगी प्राणवायु को हृदय, वक्षस्थल, कण्ठ और मूर्धा में ले जाकर ब्रह्मरन्ध्र द्वारा ब्रह्म में लीन कर देता है।[8] स्वेच्छा मृत्यु का क्रम यही है।

पातंजल योगदर्शन के विभूतिपाद में विविध सिद्धियों की चर्चा है। ध्यान, धारणा, समाधि तीनों के ही युगपद् अभ्यास का नाम संयम है।[9] संयम साधना से सिद्धियों की उपलब्धि होती है।

पाँच महाभूत एवं इन्द्रिय समूह की तीन प्रकार की परिणतियाँ हैं।[10]

धर्म, लक्षण एवं अवस्था इन तीनों परिणामों में संयम साधना से अतीत-अनागत का ज्ञान होता है।[11]

शब्द, अर्थ एवं प्रत्यय इन तीनों के भिन्नत्व स्वरूप में संयम करने से सम्पूर्ण वाणी का ज्ञान हो जाता है।[12]

संस्कारों की प्रत्यक्षानुभूति में संयम करने से पूर्व जन्म का ज्ञान हो जाता है।[13]

चित्त प्रत्यय में संयम से परचित्त का ज्ञान हो जाता है।[14]

---

१. श्रीमद्भागवत महापुराण, ११।१५।१६.
२. वही, ११।१५।२०.
३. वही, ११।१५।२१.
४. वही, ११।१५।२२.
५. वही, ११।१५।२३.
६. वही, ११।१५।२८.
७. वही, ११।१५।२६.
८. पाष्र्ण्याऽऽपीड्यगुदं प्राणं हृदुरः कंठमूर्धसु।
आरोप्य ब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्मनीत्वोत्सृजेत्तनुम्॥ —वही, ११।१५।२४.
९. त्रयमेकत्र संयमः। —पातंजल यो० विभूतिपाद, ३।४.
१०. एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्था परिणामा व्याख्याता। —पा० वि० ३।१३.
११. परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम्। —पा० वि० ३।१६.
१२. पा० वि०, ३।१७.
१३. संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्व जातिज्ञानम्। —पा० वि० ३।१८.
१४. प्रत्ययस्य परचित्त ज्ञानम्। —पा० वि० ३।१९.,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काय रूप में संयम करने से योगी अन्तर्धान हो सकते हैं। यह एक प्रकार से दूसरों की संप्रसारित नयन ज्योति किरण का अथवा उसकी ग्राह्य शक्ति का स्तम्भन है। जिससे द्रष्टा की नयन ज्योति किरण योगी के शरीर का स्पर्श नहीं कर पाती। ग्राह्य शक्ति स्तम्भन की इस प्रक्रिया में प्रकाश शक्ति असंपृक्त रहने के कारण पास में खड़ा व्यक्ति भी योगी के शरीर को देख नहीं पाता। रूप की तरह अन्य विषयों में संयम करने से शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श—सभी दूसरों के लिये अप्राप्य बन जाते हैं।[1]

विभूतिपाद के सूत्र में काय रूप का संकेत है। इसकी व्याख्या में उपलक्षण से शब्द आदि का ग्रहण किया गया है।

सोपक्रम कर्म (जिसका फल प्रारम्भ हो चुका है) और निरुपक्रम कर्म (जिसका परिपाक नहीं हुआ है) में संयम करने से मृत्यु का ज्ञान हो जाता है।[2]

हाथी के बल में संयम करने से हस्तिबल, गरुड़ के बल में संयम करने से गरुड़ के तुल्य बल, वायु के बल में संयम करने से वायु के समान बल प्राप्त होता है।[3]

विशोका ज्योतिष्मति प्रवृत्ति के प्रकाश प्रक्षेप से सूक्ष्म व्यवधान युक्त दूरस्थ वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है।[4]

सूर्य में संयम करने से सकल लोक का ज्ञान हो जाता है।[5]

चन्द्रमा में संयम करने से तारागण का ज्ञान हो जाता है।[6]

ध्रुवतारे में संयम करने से ताराओं की गति का ज्ञान हो जाता है।[7]

नाभि में संयम करने से कायस्थिति का ज्ञान हो जाता है।[8]

कठंकूप में संयम करने से क्षुधा और पिपासा पर विजय हो जाती है।[9]

कूर्माकार नाड़ी में संयम करने से स्थिरता का विकास होता है।[10]

मूर्धा की ज्योति में संयम करने से सिद्धात्माओं के दर्शन होते हैं।[11]

प्रातिभ ज्ञान के प्रकट होने से बिना संयम के भी सब वस्तुओं ज्ञान हो जाता है।[12]

स्वात्मस्वरूप का बोध होने से प्रातिभ, श्रावण, वेदन, आदर्श, आस्वाद और वार्ता—ये छह सिद्धियाँ प्रकट होती हैं।[13]

---

१. कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुः प्रकाशासम्प्रयोगे अन्तर्धानम्।—पा० वि० ३।२१.
सोपक्रम नरुपक्रम च स तत्संयमादसपरान्त ज्ञानमरिष्टेभ्यो वा।—पा० वि० ३।२२.

२. बलेषु हस्तिबलादीनि।—पा० वि० ३।२४.

३. प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट ज्ञानम्।—पा० वि० ३।२५.

४. भुवनज्ञानं सूर्यसंयमात्।—पा० वि० ३।२६.

५. चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्।—पा० वि० ३।२७.

६. ध्रुवे चंद्रविज्ञानम्।—पा० वि० ३।२८.

७. नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्।—पा० वि० ३।२९.

८. कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः।—पा० वि० ३।३०.

९. कूर्मनाड्यां स्वस्थैर्यम्।—पा० वि० ३।३१.

१०. मूर्धज्योतिषि सिद्धिदर्शनम्।—पा० वि० ३।३२.

११. प्रातिभाद्वा सर्वम्।—पा० वि० ३।३३.

१२. ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वदवार्ता जायन्ते।—पा० वि० ३।३६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रातिभ ज्ञान से भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल का ज्ञान होता है तथा दूर प्रदेश में स्थित अत्यन्त सूक्ष्म वस्तुएँ प्रत्यक्ष दिखई देती है। "श्रावण" सिद्धि से दिव्य शब्द सुनने की, वेदन सिद्धि से दिव्य स्पर्श अनुभव करने की, आदर्श सिद्धि से दिव्य रूप का दर्शन करने की, आस्वाद सिद्धि से दिव्य रस का आस्वाद लेने की, वार्ता सिद्धि से दिव्य शब्द ग्रहण करने की शक्ति प्रकट होती है।

बन्धन के हेतुभूत कर्म संस्कार को शिथिल करने से तथा मन की गति को जान लेने से चित्त दूसरे शरीर में प्रवेश करने के लिए समर्थ हो जाता है।[1]

उदान वायु को जीत लेने से जल, कर्दम एवं कंटक आदि का योगी के शरीर में संग नहीं होता।[2]

समान वायु को जीत लेने से शरीर दीप्तिमान हो जाता है।[3]

श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से कर्णेन्द्रिय में सुनने की दिव्य शक्ति प्रकट होती है। इससे योगी सूक्ष्मातिसूक्ष्म शब्द को बहुत दूर से सुन सकता है।[4]

शरीर और आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से आकाश गमन की क्षमता आती है।[5]

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ये पाँच प्रकार के भूत हैं। प्रत्येक भूत की पाँच अवस्थाएँ हैं।[6] स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थतत्त्व इन पाँचों अवस्थाओं में संयम करने से भूतविजय हो जाती है। भूत-जय से अणिमादि आठ सिद्धियों का प्रादुर्भाव तथा कायसम्पत् की प्राप्ति होती है और भूतधर्म की बाधा मिट जाती है।[7]

अणिमादि सिद्धियों के आठ प्रकार

अणिमा : सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप का निर्माण।
लघिमा : शरीर को हलका बनाना।
महिमा : सुविशाल शरीर का निर्माण।
गरिमा : शरीर में भार का विकास।
प्राप्ति : संकल्पमात्र से यथेप्सित वस्तु की उपलब्धि।
प्राकाम्य : निर्विघ्न रूप से भौतिक पदार्थों की इच्छापूर्ति।
वशित्व : भूत एवं भौतिक पदार्थों का वशीकरण।
ईशित्व : भूत एवं भौतिक पदार्थों के नाना रूप बनाने का सामर्थ्य।

रूप, लावण्य, बल, वज्र संहनन के समान देह का गठन-शरीर सम्बन्धी इन सम्पदाओं की उपलब्धि कायसम्पत् सिद्धि का परिणाम है।[8]

---

१. पा० वि० ३।३८.
२. वही, ३।३९.
३. समानजयाज्ज्वलनम्।—पा० वि० ३।४०.
४. श्रोत्राकाश सम्बन्धसंयमाद् दिव्य श्रोत्रम्।—पा० वि० ३।४१.
५. पा० वि० ३।४२.
६. वही, विभू० ३।४४.
७. वही, ३।४५.
८. वही, ३।४६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूतधर्म अनभिघात का तात्पर्य योगी की निर्वाण गति से है। जल की तरह योगी धरती में प्रवेश पा सकता है और अग्नि की ज्वालाओं का आलिंगन ले सकता है। न पृथ्वी उसकी गति को रोक सकती है, न आग शरीर को जला सकती है, न पानी उसको भिगो सकता है। सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि का तनिक भी प्रभाव योगी पर नहीं होता है।

इन्द्रियों की पाँच अवस्थाएँ हैं—(१) ग्रहण, (२) स्वरूप, (३) अस्मिता, (४) अन्वय, और (५) अर्थवत्व। इन पाँचों अवस्थाओं में संयम करने से इन्द्रियविजय होती है।[१]

इन्द्रिय-जय से मनोजवित्व, विकरणभाव और प्रधान जयसिद्धि की प्राप्ति होती है।[२]

मनोजवित्व—इससे शरीर में मन के तुल्य गमन करने की शक्ति आती है।

विकरणभाव—स्थूल शरीर के बिना भी दूरस्थित पदार्थों के प्रत्यक्ष दर्शन की क्षमता का आविर्भाव।

प्रधानजय—सम्पूर्ण प्रकृति पर विजय। समाधि सिद्ध काल में ये तीनों सिद्धियाँ स्वतः प्रकट होती हैं।

इन विभूतियों के अतिरिक्त अहिंसा, सत्य आदि की साधना से अत्यन्त विस्मयकारी परिणाम फलित होते हैं।
अहिंसा की उत्कर्ष स्थिति में योगी के सम्मुख प्रत्येक प्राणी वैर त्याग कर देते हैं।[३]
सत्य की उत्कर्ष स्थिति में वचन सिद्धि प्राप्त होती है।[४]
अचौर्य साधना की उत्कर्ष स्थिति में विभिन्न रत्नों की राशि प्रकट होती है।[५]
ब्रह्मचर्य की उत्कर्ष स्थिति में अतुल बल प्राप्त होता है।[६]
अपरिग्रह साधना की उत्कर्ष स्थिति में पूर्ण जन्म का भलीभाँति बोध होता है।[७]
उपनिषद् साहित्य में सिद्धियों को योगवृत्ति के नाम से पहचाना गया है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार ध्यान बल में योगी जब पांच महाभूतों पर विजय प्राप्त कर लेता है उस समय इन भूतों से सम्बन्धित पाँच योग-गुण प्रकट होते हैं। इन गुणों की सिद्धि हो जाने से योगाग्निमय शरीर को प्राप्त योगी को न बुढ़ापा घेरता है, न रोग सताता है, न मौत पुकारती है। उसकी इच्छामृत्यु होती है।[८] इच्छामृत्यु का बहुत सुन्दर क्रम भागवत महापुराण में (११।१५।२४) है।

पाँच योग-गुण पाँच प्रकार की सिद्धियाँ हैं। इन सिद्धियों के साथ योगी के शरीर में लघुता (हल्कापन), आरोग्य, अलोलुपत्व, शरीरसौन्दर्य, स्वरसौष्ठव, शुभगन्ध और मूत्रपुरिष की अल्पता ये विशेषताएँ प्रकट होती हैं।[९]

बौद्ध साहित्य में भी इस विषय पर महत्त्वपूर्ण बिन्दु प्राप्त हैं। विसुद्धिमग्ग[१०] में लिखा है कि समाहित आत्मा

---

१. पा० वि०, ३।४७.
२. वही, ३।४८.
३. अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।—पा० साधनापाद, २।३५.
४. सत्यप्रतिष्ठायाँ क्रियाफलाश्रयत्वम्।—पा० सा० २।३६.
५. अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।—पा०सा० २।३७.
६. ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।—पा०सा० २।३८.
७. अपरिग्रहस्थैर्यंजन्मकथन्तासंबोधः।—पा०सा० २।३९.
८. श्वेत०अ० २।१२.
९. लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादस्वरसौष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमं वदन्ति।—श्वे०अ० २।१३.
१०. पटि सम्भिदामग्ग २।२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से दस प्रकार के इद्धिविध योग्य चित उत्पन्न होता है। इससे अर्हत् मार्ग की सिद्धि होती है। इसे प्रातिहार्य भी कहते हैं। अतिशय एवं उपाय सम्पदा से भी इनकी पहचान है। इसके दस भेद हैं :

१. अधिष्ठान—अनेक रूप करने का सामर्थ्य।
२. विकुर्वण—नाग कुमार आदि विविध सेनाओं को निर्माण करने का सामर्थ्य।
३. मनोभया—मनोगत भावों का बोध।
४. ज्ञान विस्फार—अनित्यानुप्रेक्षा।
५. समाधिविस्फार—प्रथम ध्यान से विघ्नों का नाश।
६. आर्य ऋद्धि—प्रतिकूल में अनुकूल संज्ञा।
७. कर्मविपाकजा—आकाशगामिनी।
८. पुण्यवतो ऋद्धि—चक्रवर्ती आदि की ऋद्धि।
९. विद्यमया ऋद्धि—विद्याधरों का आकाश गमन का रूपदर्शन।
१०. इज्झनठेन ऋद्धि—सम्प्रयोग विधि, शिल्प कर्मादि में कौशल।

इनके अतिरिक्त अन्य नाना प्रकार की विभूतियों का उल्लेख मिलता है "दिव्या सौत" से सब प्रकार की शब्द बोधता का ज्ञान होता है। "परचित विजानन विभूति" से दूसरे के मन का बोध होता है।

दिव्य-चक्ख से दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। अधिक संयम से लाघवता और आकाश गामिनी शक्ति प्राप्त होती है। पुव्वनिवासानुस्सती से पूर्व जन्मों को जान लिया जाता है।[1]

इद्धविधि रूपपरिवर्तिनी, पारदर्शिनी, आकाशगामिनी, सूर्यचन्द्र स्पर्शिनी, विभूति का उल्लेख धम्मपद में है।[2]

तत्त्वार्थसूत्र में ऋद्धि प्राप्त आर्यों का उल्लेख है।[3]

ऋद्धि प्राप्त आर्य को ही मनःपर्यवज्ञान की उपलब्धि होती है।

बुद्धि प्राप्त आर्य ज्ञान सम्पदा के स्वामी होते हैं। क्रिया ऋद्धि प्राप्त आर्य व्योम विहरण करने की क्षमता रखते हैं। विक्रिया ऋद्धि प्राप्त आर्य नाना रूपों को बनाने में समर्थ होते हैं। तपसिद्धि प्राप्त आर्य उग्रतप, घोर तप, घोरातिघोर तप करने वाले होते हैं। औपपातिक सूत्र में गणधर गौतम के लिए ऐसे ही विशेषणों का प्रयोग आया है।

बल ऋद्धि प्राप्त आर्य मन, वाणी और काय से सम्बन्धित अतुल बल के धारक होते हैं। औपपातिक सूत्र में इनकी पहचान मनोबली, वचनबली एवं कायबली संज्ञा से हुई है। औषध ऋद्धि प्राप्त आर्य के शरीर का अशुचि पदार्थ दवा का काम करता है।

रस ऋद्धि प्राप्त आर्य की वाणी दूध व रसों के तुल्य मीठी होती है तथा इनकी वाणी कटुक विष की तरह भयंकर भी होती है। अमृत और विष दोनों प्रकार की शक्तियाँ उनकी वाणी में निहित हैं। क्षेत्र ऋद्धि प्राप्त आर्य अतिशय विशेषता के धनी होते हैं। ये जिस क्षेत्र में रहते हैं वह क्षेत्र सहस्रों व्यक्तियों से घिर जाने पर भी कम नहीं पड़ता।

तत्त्वार्थ सूत्र की व्याख्या में सात ऋद्धियों के अन्तर्गत सातवीं ऋद्धि का नाम अक्षीण ऋद्धि है।

---

१. विशेष जानकारी के लिए देखें—विसुद्धिमग्ग का इद्धिविध निद्देसो, पृ० २६१ से २६५
२. धम्मपद, २७।२.
३. तत्त्वार्थ सूत्र, १।२५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभिन्न दर्शनों में प्रतिपादित इन लब्धियों, सिद्धियों, विभूतियों एवं ऋद्धियों में अत्यधिक समता के दर्शन होते हैं। इनकी संख्या निर्णिति में भेद होते हुए भी परचित्त बोधकता, लोकस्वरूप का समग्रता से दर्शन, आकाशगामिनी विद्या, अतुल बल का प्रादुर्भाव, भौतिक शक्तियों पर नियंत्रण तथा रूप परावर्तन का विज्ञान सभी में एक वैसा फलित होता हुआ दिखाई पड़ता है। अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों का प्रायः ग्रन्थों में उल्लेख है। पता नहीं यह मूल कल्पना किसकी है और आदान-प्रदान कब से प्रारम्भ हुआ है।

इन सिद्धियों की साधना प्रक्रिया में भी बहुत साम्य है। सभी दर्शनों ने योगीजनों के इस सामर्थ्य विशेष को संयम, तप, ध्यान एवं विशिष्ट योग साधना का परिणाम माना है।

भागवतमहापुराण में श्रीकृष्ण कहते हैं—जो योगनिष्ठ और मन्निष्ठ होता है उसी में ये सिद्धियाँ प्रकट होती हैं।[1]

पातंजल योग दर्शन में इनकी प्राप्ति में तप एवं संयम पर बल दिया है। संयम साधना के लिए पातंजल योग दर्शन का तृतीय विभूतिपाद सबल प्रमाण है।

कायसम्पत एवं इन्द्रिय शुद्धि का मार्ग तप को माना है।[2]

उपनिषदों ने ध्यान एवं योग का समर्थन किया तथा बौद्ध दर्शन में समाधि भावित आत्मा को इनकी उपलब्धि बताई है।

जैन दर्शन के अनुसार ये लब्धियाँ बहुत कठोर तप एवं ऊर्ध्वगामी ध्यान साधना का निर्जराधर्मभावी सहचर परिणाम हैं।

इन आश्चर्यकारी विद्याओं के अध्ययन से आत्मा की अनन्त शक्ति का बोध होता है। लब्धियों एवं विभूतियों में प्रकटित महान् विस्मयकारी सामर्थ्य भौतिकता पर आध्यात्मिकता की विजय है और जड़ पर चेतन जगत का अनुशासन है।

बिना यन्त्र के भी आकाश में उड़ने की क्षमता, दूसरों की ग्राह्य शक्ति का स्तम्भन, अन्तर्धान हो जाने का विज्ञान, प्रत्येक इन्द्रिय से समग्र विषयों की ग्राहकता, पूर्व जन्म का बोध, मनीषियों की मनोमयी उड़ान नहीं, अपितु अपनी अन्तर्वाहिनी शक्ति के केन्द्रीकरण का सुपरिणाम है। केन्द्रित शक्ति क्या नहीं कर सकती? कील की नोक पर शक्ति केन्द्रित होकर मजबूत से मजबूत दीवार में छेद कर देती है। भाप इंजन में केन्द्रित होकर हजारों टन वजन ढो लेती है। काँच पर सूर्य की किरणें केन्द्रित हो जाने से उस पार की वस्तु जलाई जा सकती है। इसी प्रकार योगी योगबल से मन की शक्ति को केन्द्रित कर आश्चर्यजनक शक्तियाँ प्राप्त कर लेते हैं। योग साधना का लक्ष्य शक्तियों को प्राप्त करना नहीं, वासना पर विजय प्राप्त करना है। अध्यात्मवाद की साधना के लिए ये शक्तियाँ साध्य नहीं अपितु इनका प्रयोग और दर्शन वर्जनीय है।

पातंजल योग दर्शन के अनुसार सिद्धियाँ समाधि अवस्था में बाधक हैं।[3] कैवल्य की प्राप्ति इन सिद्धियों से विरक्त होने पर होती है। निर्बीज-समाधि की स्थिति यही है।[3] बौद्ध दर्शन के विनयपिटक में निर्देश है—भिक्षु गृहस्थ के सामने किसी सिद्धि का प्रदर्शन न करे। पौराणिक ग्रन्थों के अभिमत से जो साधक उत्तम योग से युक्त है और भगवत्स्वरूप में लीन है उसके लिए ये सिद्धियाँ अन्तरायभूत हैं।[5]

---

१. श्री भागवत महापुराण, ११।१५।१.
२. कायेन्द्रियसिद्धिशुद्धिक्षयात्तपसः।—पा० सा० २।४३.
३. ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः।—पा० वि०३।७७.
४. तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्।—पा०वि० ३।५०.
५. अन्तरायान् वदन्त्येता युञ्जतोयोगमुत्तमम्।—श्रीभाग०महा० ११।१५।३३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन दर्शन के अनुसार इन लब्धियों का प्रयोक्ता बिना आलोचना के विराधक होता है। वह अपने संयम को को दूषित करता है।[3]

इन सिद्धियों के प्रतिपादन में प्रतिस्पर्धा का भाव भी उभरा है। जहाँ पातंजल योग दर्शन की श्रावणसिद्धि से दूरातिदूर शब्दों को सुना जा सकता है वहाँ जैन दर्शन की संभिन्न श्रोता लब्धि से एक ही इन्द्रिय से समग्र विषयों को ग्रहण किया जा सकता है। बौद्ध दर्शन की महायान शाखा में चामत्कारिक प्रयोगों के भरपूर उल्लेख हैं।

इन चामत्कारिक शक्तियों का प्रयोग धार्मिक परम्पराओं में बहुत प्राचीन रहा है; साहित्यिक विधा में जिस समय में इनका आकलन हुआ उस समय से विभिन्न ग्रन्थों में इनका परस्पर आदान-प्रदान अवश्य हुआ है। अणिमादि आठ सिद्धियों का उल्लेख योग दर्शन, पौराणिक साहित्य एवं जैन दर्शन ने अपने-अपने ग्रन्थों में किया है। कहीं नाम-भेद कहीं रूप-भेद के साथ अणिमादि सिद्धियों की तरह अन्य सिद्धियों, लब्धियों एवं विभूतियों में भी परस्पर का विनिमय रूप झांक रहा है। इन सिद्धियों का मूलस्रोत कब से और कहाँ से है, यह एक अनुसन्धान का विषय है।

तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन !

—गीता ६।४६

तपस्वियों और ज्ञानियों से भी योगी अधिक श्रेष्ठ है, इतना ही नहीं,
अग्निहोत्र आदि कर्म करने वालों से भी योगी अधिक श्रेष्ठ है,
अतः हे अर्जुन ! तू योगी बन।

---

३. भगवती, शतक २०।१०।६८३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org